International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 170-174

उदयभानु हँस के काव्य में सांस्कृतिक जीवन मूल्य

डॉ. बबीता तंवर

Govt. College Maham, Rahtak, Haryana, India

प्रस्तावना

संस्कृति किसी भी समाज का सार्वभौम तत्त्व है और सांस्कृतिक मूल्य उन महत्त्वपूर्ण प्राप्तियों का नाम है। जो सहस्रों वर्षों से निरन्तर परिशोधित, परिष्कृत और प्रतिष्ठित होकर हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं। किसी भी देश, राष्ट्र अथवा समाज को संस्कृति ही गरिमापूर्ण बनाती है। भारतीय संस्कृति विश्व की सभी संस्कृतियों में विशिष्ट स्थान रखती है। यदि हम कहें कि यह सर्वोत्कृष्ट है तो उसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। "सा प्रथमा संस्कृति–विश्ववारा" यजुर्वेद की यह सूक्ति भारतीय संस्कृति सबसे पहले की है अर्थात् इससे पहल और कोई संस्कृति थी ही नहीं। यह 'विश्ववारा' अर्थात् समस्त संसार द्वारा वरण करने योग्य है।"[1] संस्कृति में समाज के आन्तरिक तत्त्व निहित होते हैं। जिस प्रकार आत्मा से शरीर का विवेचन तथा उसके गुणों का वर्णन किया जाता है उसी प्रकार मूल्यों से हम किसी संस्कृति की आन्तरिक शक्ति एवं सत्ता का अध्ययन करते हैं।

सांस्कृतिक मूल्य हमारी संस्कृति के वे घटक तत्त्व हैं, जिनसे संस्कृति का स्वरूप निर्मित होता है। संस्कृति श्रेष्ठ मूल्यों की संवाहक होती है। हमारी संस्कृति की मूल्य– संहिता में सहनशीलता, परोपकार, दया, करूणा, धर्म, नीति, चारित्रिक श्रेष्ठता, सर्वधर्म समभाव, विश्व परिवार तथा विश्व मैत्री निहित है। हमारे सांस्कृतिक मूल्य हमारे निष्पक्ष चिन्तन के निष्कर्ष हैं इसलिए उन मूल्यों का प्रभाव एवं महत्त्व दोनों व्यापक रहे हैं। डॉ. देवराज के अनुसार–" सभ्यता का आन्तरिक प्रभाव संस्कृति है। सभ्यता समाज की बाह्य व्यवस्थाओं का नाम है। संस्कृति व्यक्ति के अन्तर के विकास का नाम है।"[2] इस प्रकार "संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज में हम मिलजुल कर जी रहे हैं या रह रहे हैं, उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है। यद्यपि अपने जीवन में हम जो संस्काग्र जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाते हैं और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति की विरासत अपन संतानों के लिए छोड़ जाते हैं इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन का बाँधे हुए हैं तथा जिसकी रचना और विकास में संस्कृति हमारा पीछा जन्म–जन्मान्तर तक करती है।"[3] संस्कृति में हमारे जीवन के मूल तत्त्व समाहित रहते हैं जिन पर जीवन आधारित होता है। इस प्रकार "किसी देश या समाज के विभिन्न जीवन व्यापारों में या समाजिक संबंधों में मानव की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करने वाले आदेशों की समष्टि को ही संस्कृति समझना चाहिए।"[4] इस प्रकार "संस्कृति का स्वरूप सुमन में समाहित सुरभि का सा है। इसकी पहचान को और स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि प्रकृति की कृति में विकार को विकृति एवं उस कृति में सुधार या परिष्कार को संस्कृति कहा जा सकता है। अतः संस्कारों से संयुक्त कृति या सदाचार का नाम ही संस्कृति है।"[5] अतः हम संस्कार प्रदान करने वाली प्रेरणा शक्ति को संस्कृति की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं, जो हमारे संस्कारों का प्रतिफल है। इस प्रकार "संस्कृति मानव–जीवन को विकृति से बचाकर सुकृति की ओर अग्रसर करने वाला एक ऐसा रचनात्मक प्रत्यय है, जो अतीत से प्रेरित, वर्तमान से प्रतिबद्ध और भविष्य के प्रति उन्मुख है।"6 संस्कृति का स्वरुप विशिष्ट और जातीय होता है, वह समाज को विशेष अर्थ और महत्त्व प्रदान करती है। हमारे देश की सांस्कृतिक धरोहर आर्य जाति की देन है, जो सामूहिक ही नहीं सार्वदेशिक है जो सभी के सुख एवं समृद्धि की कामना करती है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।।[7]

इसी प्रकार हम 'मूल्य' शब्द पर भी विचार करें तो 'मूल्य' शब्द 'मूल' धातु में 'यत्' प्रत्यय लगाने से बना है। जिसका अर्थ है– कीमत, दाम, उपयोगिता, मोल लेने योग्य वस्तु के बदले में दिया जाने वाला धन आदि।[8] संस्कृत–हिन्दी कोश में मूल्य का व्युत्पत्तिपरक अर्थ इस प्रकार दिया है– 'मूल' धातु में 'यत्' प्रत्यय के संयोग से मूल शब्द बनता है। जो दाम, कीमत, गरिमा तथा सारता आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है।[9]

मूल्य शब्द के लिए अंग्रेजी का 'एग्जियोलोजी' शब्द भी प्रयुक्त किया जाता है। जो यूनानी शब्द 'एक्सियम' तथा 'लागस' के योग से बना है। ' एक्सियम' का अर्थ है– मूल्य या कीमत तथा 'लागस' का अर्थ है– तर्क, सिद्वान्त, मीमांसा आदि। किसी वस्तु की किसी अन्य वस्तु से तुलना करके निर्णय दिया जाता है तो वह 'मूल्य' होता है। इस तरह वस्तु के दो रूप हुए– तथ्य और मूल्य।[10] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मूल्य जीवन का अभिन्न अंग है, अन्तदृष्टि एवं अवधारणा है, एक दृष्टिकोण है।[11] साहित्य में मूल्य का विशिष्ट अर्थ है। 'मूल्य' शब्द केवल लोक कल्याण एवं मानव हित वाले अर्थ तक ही सीमित नहीं है अपितु वह साहित्य में लोक कल्याण की कामना के साथ सत्य और सुन्दर को भी समाहित कर लेता है।

उदयभानु हंस भारतीय अस्मिता और सांस्कृतिक सम्पन्नता के कवि हैं। हंस जी ने भारतीय दर्शन, धर्म और संस्कृति आदि को आत्मसात किया और वे समाज चेतना की धरती समसामयिक स्थितियों को गहरा स्पर्श देती हुई शाश्वत जीवन मूल्यों को तलाशने में सफल रही है। उसमें युग सन्दर्भों के अनुकूल जीवन सत्य की पकड़, ऊर्ध्वगामी चेतना और अमानवीय तत्त्वों से टकराने की ताकत है। इस प्रकार इनका सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति सरोकार देखते ही बनता है। इनका काव्य भारतीय सांस्कृतिक सम्पन्नता का काव्य है जो मानवीय विलास के प्रत्येक पहलू को साथ लेकर चला है।

हंस जी के काव्य में सांस्कृतिक मूल्यों की पर्याप्त अभिव्यक्ति हुई है क्योंकि संस्कृति एवं सांस्कृतिक मूल्य किसी भी देश एवं समाज की धरोहर होते हैं। इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों पर हमारा समाज आधारित होता है। इस प्रकार ''संस्कृति, किसी देश जाति अथवा मानव के इन आन्तरिक गुणों की समष्टि का नाम है जो उसके आचार–विचार, कार्यकलाप एवं जीवन पद्धतियों में अभिव्यक्त होती है मानव अपने सांस्कृतिक गुणों एवं मूल्यों के कारण एक दूसरे से चरित्र, धर्म नैतिकता आदि में भिन्न व्यक्तित्व वाला होता है। प्रत्येक जाति देश अथवा व्यक्ति के भी भिन्न परिवेश में चलने के कारण, भिन्न–भिन्न सांस्कृतिक मूल्य होते हैं। सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति, हमारे भावों, विचारों एवं व्यवहारों द्वारा होती है। हमारी संस्कृति के गुण या मूल्य हैं–दमा, प्रेम, करूणा, सहानुभूति, सत्य, अहिंसा, परोपकार, आस्था, श्रद्धा, क्षमा, उदारता, विश्वबन्धुत्व की भावना, त्याग एवं संयम तथा सदाचार आदि।''12 इस प्रकार हंस जी का काव्य संस्कृति एवं मानव विकास के प्रत्येक पहलू को लेकर चला है। अतः इनका काव्य भारतीय संस्कृतिक सम्पन्नता का काव्य है, जिसमें कर्म को महत्त्व दिया गया है।

'कर्म' हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। कर्महीन जीवन निष्प्राण माना जाता है। अर्जुन को उपदेश देते हुए भगवान श्रीकृष्ण भी कहते हैं कि तुम सगे सम्बन्धियों के लिए मत सोचो, तुम कर्म करो, कर्महीन होकर तुम अपने अस्तित्व से गिर जाओगे। मानव को कर्म करते रहना चाहिए। कर्म से ही व्यक्ति–पुरूषार्थ होता है और कहा भी गया है कि हर काल में चाहे वह सतयुग, द्वापर, त्रेता या कलयुग हो, इंसान जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। कर्मों के आधार पर ही मनुष्य की गति होती है। गीता में श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा भी था कि कर्म करते रहो, फल की चिन्ता न करो।

कर्म मानव–जीवन का शाश्वत–सत्य है। हंस जी ने अपने काव्य में कर्म–मूल्य को महत्त्व दिया हैं क्योंकि कर्म हमारी संस्कृति का ही घटक तत्त्व है तथा यह मानव–जीवन से बंधा है। 'मंजिल दूर नहीं' नामक कविता में हंस जी ने कर्म करने की प्रेरणा दी है और कहा है कि व्यक्ति को सतत् संघर्ष करते रहना चाहिए ताकि वह अपनी मंजिल को प्राप्त कर सके–

''चलने से पहले घबरा कर,
हिम्मत हार न देना पगले।
आँखों से हो दूर मगर,
पाँवों से मंजिल दूर नहीं।''[13]

हंस जी ने भारत के स्वर्णिम सांस्कृतिक अतीत का गौरवगान किया है ताकि वर्तमान युवा वर्ग इससे परिचय प्राप्त करके कर्म–क्षेत्र में अपना अमिट योगदान दे सके। हंस जी कर्म करने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि –

''प्राचीन सांस्कृतिक गौरव की मैं याद दिलाने आया हूँ।
वीरों को विस्मृत क्षात्रा–धर्म का पाठ पढ़ाने आया हूँ।।
मैं नवयुग को गोविन्द क्रान्ति का चक्र चलाने आया हूँ।
फिर से अर्जुन को गीता का उपदेश सुनाने आया हूँ।''[14]

कर्म' जीवन का सर्वोपरि मूल्य है। हंस जी ने अर्जुन और भीम के असीम शौर्य का स्मरण करते हुए कर्म का महत्ता देकर कहा है –

''वंशज हैं अर्जुन भीम के
स्मारक हैं शौर्य असीम के।
जीवन क्या है ? बस कर्म है,
गीता ही जिसका धर्म है।"[15]

मनुष्य यदि अपने कर्म और वचनों पर स्थिर रहता है तो कोई भी ताकत उसे विचलित नहीं कर सकती। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसके मार्ग में भले ही असँख्य कष्टों को सहन करना पड़े परन्तु वह उसे प्राप्त करके ही दम लेता है। 'सुख–दुख' नामक कविता में हंस जी ने कहा है–

''रात भले लम्बी हो जाए,
पौ फटने को रोक न पाए,
पर्वत फोड़ नदी–नद सागर तक अवश्य पहुंचेंगे।"[16]

परिश्रम करने वाले व्यक्ति के बुरे दिन निश्चित रूप से समाप्त होंगे, भले ही उसे कुछ इंतजार क्यों न करना पड़े। हंस जी ने कहा है –

"तनिक प्रतीक्षा करनी होगी,
रीति गागर भरनी होगी,
पतझड़ ऋतु आखिर बीतेगी,
नए फूल निकलेंगे।"[17]

कर्म–मूल्य में मनुष्य का अड़िग विश्वास होना चाहिए क्योंकि कर्म पर ही फल निर्भर करता है, यही विधि का विधान भी है–

''विधि का यही विधान है, यह प्रकृति की टेव।
फल निर्भर है कर्म पर मानव हो या देव।।"[18]

कर्मरत मनुष्य यदि सही दिशा में प्रयास करता है और वह अपने लक्ष्य से भी भली भाँति परिचित है तो सफलता उसको वरदान स्वरूप प्राप्त होती है। हंस जी ने कहा है–

''निश्चित पथ हो और सही लक्ष्य का ज्ञान।
तभी कर्म से सिद्धि का मिलता है वरदान।।"[19]

सृष्टि के प्रारम्भ से ही सत्य चला आ रहा है। सत्य और असत्य जीवन के दो पहलू हैं। धर्म में सत्य को ही सत् माना गया है। सतयुग में सत्य को पर्याप्त महत्त्व दिया गया लेकिन कलयुग में यह न के बराबर है। आधुनिक मनुष्य सच की बजाए झूठ को मानता है और झूठ का ही पक्ष लेता है फिर भी सत्य की हमेशा से ही जीत होती है। कहा भी गया है –'' सत्यमेव जयते।'' सत्य, धर्म, समाज और संस्कृति का हिस्सा नहीं है(सत्य को राजनीति में भी महत्त्व दिया जाता रहा है। गाँधी जी सत्य और अहिंसा के पुजारी थे। उन्होंने सत्य को ईश्वर माना और मनसा, वाचा, कर्मणा सत्य के परिपालन पर बल दिया। गाँधी जी ने सत्य के पालन को राजनीति के क्षेत्र में भी अपरिहार्य माना लेकिन परिवर्तित परिवेश में सत्य का कोई महत्त्व नहीं रहा। आज सत्य बहरा और न्याय अँधा हो गया है। 'बदलते रंग' नामक कविता में हंस जी ने कहा है–

''हो गया है सत्य बहरा
न्याय अँधा और अपंग।।''[20]

वर्तमान युग में जिन्दगी दलदल बनती जा रही है क्योंकि उसमें अनेक दुर्व्यसन प्रवेश कर गए हैं। सत्य–भवन जर्जर हो

चुका है, केवल कल्पना ही शेष रह गई है। 'जिन्दगी' नामक कविता में हंस जी ने कहा है–

''सत्य का रथ भग्न जर्जर,
कल्पना ही शेष,
भूत बंगले में रखे हैं
भूत का अवशेष
पाँव कैसे टिक सकेंगे जब धरा हो दलदली।''[21]

सारा संसार स्वार्थ के वशीभूत दृष्टिगोचर होता है(वह कोई भी कार्य निःस्वार्थ भाव से नहीं करता। उसके प्रत्येक कर्म में स्वार्थ छिपा हुआ है इसलिए वह सत्य के स्थान पर असत्य का सहारा लेता है। ऐसे लोगों को लताड़ते हुए हंस जी कहते हैं–

''ढोंगी दुनिया सत्य न बोले,
बिना स्वार्थ के गाँठ न खोले,
कुछ न देखती, कहती, सुनती, अँधी, गूँगी, बहरी।"[22]

यज्ञ–मूल्य भी भारतीय संस्कृति का विशिष्ट मूल्य है। यज्ञों के द्वारा लोक हित के मूल्यों की अभिव्यक्ति करते हैं। यज्ञ के द्वारा हम अपने विकारों और आत्मा की शुद्धि करते हैं। भारतभूमि सदैव ही यज्ञ–संस्कार की अनुपालना करती रही है क्योंकि यज्ञाग्नि मानव जीवन में निर्मलता का संचार करती है जिससे मानवता चहक उठती है–

''यह देव विनिर्मित भूमि थी,
घृत–चुरू से सुरभित भूमि थी।
यज्ञाग्नि यहीं पर थी जली,
महकी मानवता की कली।''[23]

यज्ञ–संस्कार के पावन पर्व पर मंत्रेचार किया जाता है जो सात्विकता और शुद्धता के सूचक हैं। समाज में प्रायः ऐसा माना जाता है कि यज्ञ पवित्राता के साथ–साथ कल्याणकारी होता है। वेदों में इनकी उपयोगिता का बखान किया गया है। 'यज्ञ–मण्डप' नामक कविता में हंस जी ने कहा है –

''वहाँ वेदों के लिखे थे मंत्र सुन्दर सर्वथा,
विश्वकर्मा से रचित ज्यों यज्ञ की थी वेदिका।
यज्ञ का था कुंड निर्मल जैसे ऋषियों का सुयश,
थे रखे हर कोण में जल से भरे मंगल कलश।''[32]

मंत्र हमारी सांस्कृतिक परम्परा तथा नित्य कर्म एवं आध्यात्मिक चेतना के संवाहक हैं। काव्य का प्रथम साक्षात्कार हमें मंत्र, ऋचा, स्रोत और प्रार्थना के रूप में होता है। इन रचनाओं के प्रतिपादन में विचारगत एवं कर्मगत ऐसी समरसता थी कि उनके उच्चरित शब्द मंत्र या स्रोत हो जाया करते हैं। ''काव्य का प्रथम साक्षात्कार हमें मंत्र, ऋचा, स्रोत और प्रार्थनाओं के रूप में होते हैं। कालान्तर में ये ही पद, भजन और कीर्तनों के रूप में पल्लवित होता है। आज का निवेदनात्मक काव्य, वैदिक मंत्र शाखा का ही काव्य है। सामूहिक मंत्रात्मकता ही कालान्तर में स्तोत्रा कहलायी। मंत्र, रचना का नाम है, पाठ का नहीं। इसी प्रकार स्तोत्रा पाठ का नाम है, रचना का नहीं। मंत्र साक्षात् प्रधान होता है। स्तोत्रा स्तवन प्रधान मंत्र रचना से ऊपर की स्थिति है इसलिए मंत्रों के बारे में यह श्रुति है कि ऋर्षियों द्वारा वो प्रणीत न होकर साक्षात्कृत हैं।''33 भारतभूमि ज्ञान का अक्षयकोश रही है, यहाँ प्राचीनकाल से ही वेद–धर्म और शास्त्रों पर आधारित जीवनयापित किया जाता रहा है। हंस जी ने कहा है –

''मंत्रों के द्रष्टा थे यहाँ,
शास्त्राों के स्रष्टा थे यहाँ
सब वेद धर्म का मूल थे,
खिल रहे ज्ञान के फूल थे।"[26]

केवल यहीं नहीं वेद–मंत्रों की जननी भारत भूमि ही है। हंस जी ने 'आर्यावर्त' नामक कविता में इसका उल्लेख करते हुए कहा है–

''रचना समस्त ऋग्वेद की
श्रुतियों के शाखा भेद की
यजु और साम के मंत्र भी,
अति गुह्य अथर्वण तंत्र भी।''[35]

'मंत्र' भारतीय समाज और संस्कृति के नियामक हैं। यहाँ किसी भी कार्य के प्रारम्भ में मंत्रोच्चारण किया जाता है जो कि आस्था और विश्वास के साथ शुभफलदायी माना जाता है तथा विजय अभियान को उन्नत करने वाला है। हंस जी के अनुसार–

''यूँ दिग्विजयी उत्साह से
मंत्रों के सहज प्रवाह से
क्रम चला विजय–अभियान का
रथ 'आर्यावर्त' महान् का।''[28]

हंस जी ने 'हरियाणा दर्पण' नामक कविता में भी वेद–मंत्रों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है–

''ब्रह्मवर्त प्रदेश, वेदमंत्रों का जहाँ खजाना,
गोधन का भण्डार जहाँ पर दूध दही का खाणा।''[29]

लेकिन वर्तमान भौतिक–संस्कृति में मंत्र–मूल्य की दशा को देखकर हंस जी यथार्थ का बखान करने से नहीं चूकते क्योंकि आज समाज में दिखावा अधिक है, यथार्थ कम। आज लोकलाज लेश मात्र भी नहीं रही (मंगल सूत्र जो कि पवित्र प्रेम का प्रतीक है वह भी आज बिकाऊ है। हंस जी ने इस परिवर्तित परिवेश को देखकर कहा है–

''सिसक रही है क्वारी मेंहदी लोक–लाज की दीवारों में,
मंगल–सूत्र जवानी का है आज बिकाऊ बाजारों में।
कितनी शहनाई बजवाओ,
पंड़ित जी से मंत्र पढ़ाओ,
जब तक हृदय ने फेरे ड़ाले,
वह गठबन्धन व्यर्थ रहेगा।''[30]

भारतीय संस्कृति का एक मूल्य 'करूणा' भी है। करूणा में यह भावशक्ति होती है कि वह भयानक से भयानक युयुत्सा को महाकरूणा में डूबो कर शांत कर देती है। करूणा नामक मूल्य का अपना महत्त्व है। हमें दीन–हीन वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं करूणा भाव दिखाना चाहिए, उनके कष्टों को दूर कर उनके आँसुओं को पोंछ़ना चाहिए। 'दूर के मुसाफिरों' नामक

कविता में करूणा भाव की अभिव्यक्ति करते हुए हंस जी कहते हैं–

''जो युगों से रो रहे
नित्य बोझ ढ़ो रहे,
बाँह थाम कर उन्हें उभारते चले चलो,
आंसुओं को पोंछ कर दुलारते चले चलो"[31]

भारत में नारी को विशेष मान–सम्मान दिया जाता रहा है क्योंकि वह करूणा, त्याग और तप की प्रतिमूर्ति है। 'नारी के विद्रूप' नामक कविता में हंस जी ने कहा है–

''केवल भोग्या मत समझ नारी को नादान।
करूणा, ममता, त्याग, तप है उसकी पहचान।"[32]

नारी करूण भाव की निधि है। सृष्टि का अनुपम वरदान और उपहार है, त्याग–तप की साक्षात् प्रतिमा है। हंस जी ने कहा है–

''है सृष्टि का उपहार अनूठा नारी,
वरदान विधाता का है मंगलकारी।
वह है पवित्र यज्ञ की समिधा जैसी,
तप त्याग ये उसके हैं जगत बलिहारी।"[33]

साधारण व्यक्ति साधारण नहीं होता, शक्तिमान मदगर्भित अथवा कोई भी बड़ा इतिहास पुरूष उतना सहनशील अथवा सहिष्णु नहीं हो सकता जितना की एक साधारण व्यक्ति अथवा सामान्य जन होता है क्योंकि साधारणता में ही सहिष्णुता की विद्यमानता है। सुख–दुख जीवन के सहचर हैं। इनमें समान व्यवहार करना एवं समभाव रखना व्यक्ति के लिए आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। व्यक्ति को विपरीत स्थितियों में भी व्याकुल नहीं होना चाहिए और न ही व्याकुल होकर रोना चाहिए। हंस जी ने 'सुख–दुख' नामक कविता में सहिष्णुता को मूल्यांकित करते हुए कहा है–

'''दुख में व्याकुल होना कैसा ?
कायर बन कर रोना कैसा ?
एक सूर्य के छुप जाने पर लाखों दीप जलेंगे।"[34]

व्यक्ति को सहनशील होना चाहिए। विपरीत परिस्थितियों में भी अपने धैर्य को बनाए रखना चाहिए क्योंकि दुख के बाद सुख की सुनहरी प्रभात का आगमन होता है। हंस जी ने 'सूक्ति–सुमन' में कहा है–

''सह लो दुख आए कभी रहो धीर गंभीर।
फटे दूध से लो बना, तुम स्वादिष्ट पनीर।"[35]

हमारी संस्कृति में दान का अपार महत्त्व है। हंस जी ने कहा है कि व्यक्ति ही नहीं प्रकृति भी दान में विश्वास करती है–वृक्ष, फल,फूल सभी संसार के प्राणियों को कुछ न कुछ दान करते हैं परन्तु इंसान दानवीर होने का दावा करता है वह इनके आगे कुछ भी नहीं है। भौतिक प्रतिस्पर्धा के इस युग में दान का महत्त्व क्षीण हुआ है। ''धरम बेचते फिरते हैं' नामक कविता में हंस जी ने वर्तमान समाज की पोल खोलते हुए कहा है–

''अब तो संत–महंत तिजोरी भरते हैं,
किन्तु गृहस्थी घर में भूखे मरते हैं।
चतुर पुजारी दान–दक्षिणा की खातिर
अपने आदर्शों का सौदा करते हैं।"[36]

भारतीय समाज में अनेक पर्वों पर दान करने की परम्परा रही हैं, जिसे शुभ एवं सुख–शांति सूचक माना जाता है। मकर संक्रांति ऐसा ही पर्व है जिस पर दान दक्षिणा के साथ परिजनों एवं गुरूजनों का आदर–सम्मान किया जाता है। 'तीज–त्योहार' नामक कविता में हंस जी ने कहा है –

''है स्नान मकर संक्राति का,
पावन प्रतीक सुख–शांति का।
शुभ समय यज्ञ का, दान का
परिजन–गुरूजन सम्मान का।"[37]

उत्सव और त्योहार हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग है। भारत में उत्सव सदियों से मनाए जाते हैं परन्तु प्राचीन काल में उत्सवों की लोकप्रियता जितनी थी उतनी आधुनिक युग में नहीं रही। वर्तमान काल में व्यक्ति इतना व्यस्त हो गया है कि वह अपने रीति–रिवाज, तीज–त्योहार को पूरी तन्मयता, लग्न एवं श्रद्धा से मनाने के लिए समय ही नहीं निकाल पाता।
हंस जी ने अपने काव्य में तीज–त्योहारों का पर्याप्त उल्लेख किया है। 'गोगा नवमी' नामक उत्सव का इन्होंने बड़ी तन्मयता से वर्णन किया है। इस दिन डैरू वादन करते हुए एवं विशिष्ट साज–शृंगार से गोगा पीर का पूजन–अर्चन किया जाता है तथा गोगा पीर के मेले का दृश्य भी मनभावन होता है। हंस जी गोगा नवमी पर्व का वर्णन करते हुए कहते हैं –

''गूगा नवमी की रीत है
छिड़ता डैरू–संगीत है।
अद्भुत मेले का शोर है,
शोभा बिखरी सब ओर है।"[38]

गोगा वीर की पावन स्थली पर जाकर पुरूष और स्त्रियाँ मन्नतें माँगते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे जीवनरक्षक हैं, उद्धारक हैं, हमारी सर्पों से रक्षा कीजिए

''मन्नतें मांगती वीर से,
उस घुड़सवार जयवीर से
हे सिद्ध राजयोगी अमर!
सर्पों से सदा बचाव कर।"[39]

इसके अलावा हंस जी ने होली, दीवाली, तीज, रक्षाबंधन आदि विभिन्न भारतीय त्योहारों का उल्लेख किया है। साथ ही धर्म एवं ईश्वर के प्रति मूल्य दृष्टि, परिवर्तित बोध और निराशा विषयक जीवन–मूल्य, आश्रम–मूल्य, विश्वबन्धुत्व की भावना, आगत मूल्य, फूल और काल का महत्त्व तथा परोपकार आदि विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों का मूल्याकंन किया है। जिनका यहाँ उल्लेख करना विभिन्न कारणों से सम्भव नहीं है।
निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि हंस जी ने अपने काव्य में विभिन्न सांस्कृतिक मूल्यों को अपनाया है। जिससे हमें उनके सांस्कृतिक प्रेम का परिचय मिलता है क्योंकि संस्कृति किसी भी देश अथवा जाति की विशिष्टता की सूचक मानी जाती है जो देश की चिन्तन परम्परा की परिचायक होती है। सांस्कृतिक मूल्यों का विकास भी प्राकृतिक परिवेश की अनुकूलता में ही होता है। हंस जी ने अपने काव्य में भारतीय

सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखा ताकि समाज में सुव्यवस्था बनी रहे। व्यक्ति का आचरण एवं कार्य जो समाज में प्रशंसा एवं स्थान प्राप्त कर लेता है वहीं मूल्य का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार मूल्य व्यक्ति के लिए परितोष एवं प्रेरणा तथा समाज के लिए व्यवस्था का आधार बन जाते हैं। हंस जी ने सांस्कृतिक मूल्यों का उल्लेख युग की आवश्यकता के अनुरूप किया है ताकि इस भौतिक प्रतिस्पर्धा के युग में भारतीय संस्कृति एवं जीवन मूल्य अपने महत्त्व को बनाए रखे, जो समाज एवं संस्कृति की रक्षा करके उसे नष्ट होने से बचायेंगे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हंस जी भारतीय संस्कृति और उसके मूल्यों के संरक्षक एवं संवाहक हैं, संस्कृति के अनुपालक तथा मूल्यों के प्रेरक एवं प्रेषक हैं। जिनका अनुगमन करने से समाज को नई दिशा और दशा मिलती है। वस्तुतः सांस्कृतिक मूल्यों की परिधि अतिविस्तृत है इसमें मानव जीवन के समस्त कार्य व्यापार सम्बन्धी सभी पक्ष आ जाते हैं जो सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् से परिपूर्ण होते हैं, जिनका हंस जी ने ईमानदारी के साथ निर्वहन किया है।

सन्दर्भ सूत्र

1. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, संस्कृति के स्तम्भ, पृष्ठ. 11
2. डॉ. देवराज, भारतीय संस्कृति, पृष्ठ. 20
3. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विचार और वितर्क, पृष्ठ. 181
4. बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृष्ठ. 01
5. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, संस्कृति के स्तम्भ, पृष्ठ. 12
6. डॉ० हरीशचन्द्र वर्मा, निराला–काव्य का सांस्कृतिक पक्ष (सप्तसिंधु), पृ० 41
7. ईशावास्योपनिषद्, पृ० 370
8. सम्पा॰ द्वारिकाप्रसाद शर्मा, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ. 934
9. सम्पा॰ वामन शिवराम आप्टे संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ. 640
10. डॉ. हृदयनाराण मिश्र, विश्वकोश–9, पृष्ठ. 365
11. रोहित मेहता, दि इंटयूटिव फिलॉसफी, पृष्ठ. 39
12. डॉ0 नरेश मेहता, संशय की एक रात, पृष्ठ 14
13. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत (मंजिल दूर नहीं) पृष्ठ 29
14. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस रचनावली भाग–2 (दशम् सर्ग) पृष्ठ 187
15. वही. वही. (मर्द माणस) पृष्ठ 217
16. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत (मंजिल दूर नहीं) पृष्ठ 30
17. वही. वही. (सुख–दुख) पृष्ठ 57
18. उदयभानु हंस, दोहा सप्तशती (सुक्ति सुमन), पृष्ठ 36
19. वही. वही. पृष्ठ 40
20. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत(बदलते रंग) पृष्ठ 43
21. वही. वही. (जिन्दगी) पृष्ठ 49
22. वही. वही. (जीवन क्या है) पृष्ठ 106
23. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस रचनावली भाग–2, पृष्ठ 244
24. वही, उदयभानु हंस, रचनावली–1 (यज्ञ मण्डप), पृष्ठ 309
25. डॉ0 नरेश मेहता, काव्य का वैष्णव व्यक्तित्व, पृष्ठ 26
26. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस रचनावली भाग–2(सारस्वत प्रदेश) पृष्ठ 246
27. वही. वही. (आर्यावर्त) पृष्ठ 257
28. वही. वही. पृष्ठ 252
29. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस रचनावली भाग–2(हरियाणा दर्पण) पृष्ठ 385
30. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत(अमृत कलश) पृष्ठ 27
31. वही. वही. (दूर के मुसाफिरों) पृष्ठ 62
32. उदयभानु हंस, दोहा सप्तशती(नारी के व्रिदूप), पृष्ठ 16
33. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस रचनावली भाग–1, पृष्ठ 138
34. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत(सुख–दुख) पृष्ठ 55
35. उदयभानु हंस, दोहा सप्तशती(सुक्ति सुमन), पृष्ठ 38
36. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस के प्रतिनिधि गीत(धरम बेचते फिरते हैं) पृष्ठ 111
37. सम्पा0 डॉ0 रामसजन पाण्डेय, उदयभानु हंस रचनावली भाग–2(तीज त्यौहार) पृष्ठ 232
38. वही वही वही पृष्ठ 230
39. वही वही वही